हौसला

डॉ. वंदना
मो. 8178190409
vv513420@gmail.com

आज घास पर पैर रखते, आगे बढ़ती हुई कीर्ति सूरज की सारी रोशनी अपने भीतर भर लेना चाहती थी। यूँ तो उसे सर्दी की यह धूप से जगमगाती सैर कभी नसीब नहीं होती, ज्यादातर ढेर सारे काम के बीच उसे फुर्सत के कुछेक क्षण मिल ही नहीं पाते, पर न जाने क्यों आज उसने खुद को लगभग धकेलते हुए कॉलेज ग्राउंड में प्रवेश करा लिया है। नरम घास पर चलना कितना आरामदायक और सुकून भरा होता है, पर जब मन में कुछ ऐसा हो जो बहुत तेज चुभ रहा था, जिसे वह चाहती थी कि ग्राउंड की परिक्रमा करते हुए, इतना घिस दे कि सपाट हो जाए। उसे लग रहा था कि जैसे घास के छोटे-छोटे, नरम और लुभावने हिस्से उसके पैरों के नीचे लगातार कुचले जा रहे हैं, वैसे-वैसे... ही तो लगभग कीर्ति भी अपने भीतर महसूस कर रही थी। एक-एक सांस घुटन, अभाव और अपमान की यातना के नीचे दबी हुई। बाहर खिली धूप भी उसकी चुप्पी से भीतर फैले अंधेरे को छिन्न-भिन्न नहीं कर पा रही थी। उसकी तमाम कोशिशों के बावजूद भी मन के अंदर का अंधेरा था कि छंटने का नाम नहीं ले रहा था।

कीर्ति तेज कदमों से मैदान के चक्कर काटते हुए ग्राउंड के कोनों में बड़े करीने से लगे टूटे पत्ते और सूखी डालियों के कूड़े में बदले ढेर को देख रही थी। उसे यह बड़ा अटपटा भी लग रहा था। कूड़े का ढेर करीने से...। लग रहा था कि आस-पास कूड़े के बड़े-बड़े ढेर बड़े करीने से सजाए गए हैं...। सब कुछ कूड़े में तब्दील होता हुआ, पर बड़ा... बड़ा सभ्य करीने से...। उसे स्मरण होने लगा कि माँ-पिता और भाई ने उसे यहां तक पहुंचाने के लिए कितनी हाड़-तोड़ मेहनत की थी। माँ को तो घड़ी की सुइयों से भी तेज चलते देखा था उसने। सवेरा निकलने की तो बात ही क्या, वे रात अंधेरे से ही उठकर सब्जी मंडी भागती-फिरती थीं। खरीदी हुई सब्जियों को भैया अपनी साइकिल पर ढोने में उनकी मदद करते। सुबह कीर्ति घर में सब्जियों के ढेर देखती तो लगता कि उनके जीवन का सारा हरा रंग इन सब्जियों में ही समा गया है। यहां से माँ लगभग भागते हुए सरकारी प्राथमिक स्कूल के गेट पर रंग-बिरंगी टॉफी, गोलियां और बिस्किट बोरे के ऊपर सजाकर बेचने

के लिए बैठ जाती। बच्चे स्कूल में जाते और लंच तथा छुट्टी होने पर घर लौटते समय इनकी खरीदारी करते। हर सिक्के के साथ माँ के चेहरे की खनखनाहट बढ़ती जाती।

स्कूल के बाहर टॉफियाँ बेचने का काम सिर्फ माँ ही नहीं करती थीं बल्कि वहां और लोग भी लाइन लगाकर खूब होड़ लगाते। कई बार तो बात लड़ाई-झगड़े तक चली जाती। माँ अक्सर शांत रहती। कोई उन्हें परेशान करे या उनकी जगह अपना बोरा बिछा ले तो भी वो लंबी बहसों में नहीं पड़ती थीं। कीर्ति माँ को समझाती थी कि आप लड़ती क्यों नहीं? पर वे हर बार उसे शांत रहकर अपना काम करने का पाठ सिखातीं। माँ ने उसे यह पाठ कई ऐसे मौकों पर दोहराया था, 'बच्ची शांत रहो, लड़े-झगड़े कुछ ना मिले। इनका जाय दिया। हम थोड़े में गुजारा कय लैबे।' और कई बार कीर्ति पूछ बैठती, 'कितना–थोड़ा?' तब माँ चुप हो जाती। उनके शांत स्वभाव को, झुंड ने अपनी ताकत समझ लिया था। अब उनकी ओर से लड़ाई-उलाहने बढ़ने लगे थे। एक दिन फिर कीर्ति ने माँ को समझाया, 'एक-बार आप भी क्यों नहीं झगड़ती?' तब माँ ने कहा, 'बिटिया कीचड़ मा उतरबू तो कीचड़ लगे बिन ना रहे, हरदम कीचड़ से निकलै का सोचा।' मां की कही बात कीर्ति के अन्तर्मन की गहराई तक उतर गई। कीर्ति को मां की बात सुनकर पहली बार लगा कि दलदल बहुत गहरा है और उसे उससे बाहर निकलने की छटपटाहट उससे भी तेज। उसने इरादा कर लिया था कि खूब पढ़-लिखकर इस दलदल से जरूर बाहर निकलेगी। पढ़े-लिखे लोगों के बीच, कीचड़ से दूर हरियाली के बीच काम करेगी।

स्कूल से लौटकर माँ, जल्दी-जल्दी दोपहर का खाना खाकर, फिर अगले मोर्चे के लिए खुद को तैयार कर लेती। सब्जी की दुकान सड़क किनारे लगाकर वो उसके साथ ही गर्मियों में भुट्टे सेंक कर बेचतीं। जलते कोयले की अंगार की तपती गर्मी में भुट्टा नहीं असल में माँ ही भुनती थीं। कीर्ति ने कॉलेज से लौटकर ट्यूशन पढ़ाना शुरू किया था। इन्हीं पैसों से वह अपनी पढ़ाई का खर्च निकालना चाहती थी। उसे पता था कि उसे माँ पर अपना भी बोझ नहीं डालना है। ट्यूशन का समय शुरू होने से पहले वह माँ के साथ सड़क पर सब्जी लगवाने में मदद करती थी। उसे कई बार उसके सहपाठी और ट्यूशन के छात्र सड़क किनारे बैठा देखते तो उनके चेहरे पर चढ़ती मुस्कुराहट कीर्ति के चेहरे पर उदासी उतारने लगती, लेकिन फिर भी कीर्ति ने कभी दूसरों से खुद को कम नहीं माना। आखिर उसकी माँ की तरह मेहनत करते उसने गली में किसी को नहीं देखा था, बल्कि माँ की मदद करके उसे इससे राहत ही महसूस होती थी, पर फिर भी माँ उसे हर बार कहती, 'हमरे काम मा ना लागा गुड़िया, पढ़ाई पर ध्यान दिया। ई सब हम खुद कै लेबे। बस तुहार पढ़ाई हम ना कय पउबे।' फिर एक फीकी हंसी के साथ कहतीं, 'अगले जन्म मा अपनी माई से पढ़ावै का जरूर कहबै।' कीर्ति को कई बार लगता जैसे उसके भीतर माँ ही बैठकर पढ़ाई कर रही हैं। ग्राहक भुट्टों और सब्जी के दामों को कम करवाने के पीछे ही लग जाते। जिस गली में वे रहते थे, वह गुर्जर बहुल इलाका था। उनका रौब-दाब कहीं से भी कम न था बल्कि वे सारा रौब किराएदारों और मेहनतकश लोगों पर ही निकालते थे। कई बार वे माँ से उधार की सब्जियां खरीदते और भुट्टों को विशेष रूप से सेंकने को कहते थे पर जब माँ को कई दिनों बाद भी उनसे उधारी ना मिलती तो वे उनसे अपने पैसे माँगने उनके दरवाजों पर जातीं। वे रौबदार रईस उल्टा उन्हें ही झूठा बनाकर वापस भेज देते कि उन्हें उधार लेने की क्या जरूरत? कीर्ति को फिर लगने लगता कि सिंकती भट्टी से दूर पढ़े-लिखे लोगों की दुनिया में उसे प्रवेश करना है, तब हालात जरूर बदलेंगे।

भैय्या ही कीर्ति की दुनिया थे। उसकी अपनी कोई खास दोस्त या सहेली नहीं थी। भैया ही उसके सबसे अच्छे दोस्त थे। उन्हें अपनी पढ़ाई को बीच में ही छोड़ना पड़ा था पर वह कीर्ति को खूब पढ़ाना चाहते थे। कीर्ति के स्कूल के विभिन्न विषयों के लंबे-लंबे पाठों को लेकर वह पिताजी के साथ चर्चा करते। उनकी बातों में ही वो पूरा पाठ सीख जाती थी। कक्षा में टीचर के पढ़ाने के वक्त वे सारी चर्चाएं उसकी सहेली बन जाती थीं। उस दिन स्कूल से पढ़कर जब कीर्ति घर लौटी तो उसने देखा कि भैया बहुत परेशान हैं। उनकी साइकिल कई दिनों से बार-बार पंचर हो जाती थी। कीर्ति ने भैया को परेशान देखा तो सुझाव दिया कि आप साइकिल चलाना छोड़ क्यों नहीं देते? शायद इससे इस समस्या से निजात मिल जाए। कीर्ति को यही सबसे बढ़िया सॉल्यूशन समझ में आ रहा था, हालांकि वह जानती थी कि यह उसकी विशेषज्ञता का क्षेत्र नहीं है। भैया ने हंसते हुए कहा, 'अरे पंचर की वजह से यात्रा थोड़े रुकेगी। इसे ठीक करके आगे बढ़ेंगे। साइकिल चलाना छोड़ देना भला

कोई हल थोड़े ही है।' अब कीर्ति के दिमाग का पंचर उसे भरता हुआ लगा और लगा की साइकिल के दोनों पहिए उसके पैरों में जुड़ गए हैं।

कीर्ति अभी भी कॉलेज ग्राउंड में चक्कर लगाती हुई, यही सब तो, सोच रही थी। अचानक उसे भैया की बातें याद आने लगी थी। उसे लगा कि आज भी वह उसके साथ होते तो जरूर फिर से कोई पहिया उसके पैरों में बांध देते। उसकी आंखों से कुछ बूंदें लुढ़क कर घास में ओस बनने से पहले ही गालों पर फिसलती रहीं। बड़ी मेहनत के साथ उसने अपनी पढ़ाई इतने वर्षों में पूरी कर ली थी। बहुत लंबी प्रतीक्षा और ढेर सारे इंटरव्यू देने के बाद इस प्रतिष्ठित महाविद्यालय में उसे स्थाई नौकरी मिली। संघर्ष यात्रा इतनी लंबी हो चली थी कि अब इस नियुक्ति की खुशी साझा करने के लिए पिता और भैया इस दुनिया में नहीं रहे। कीर्ति के साथ अब सिर्फ उसकी माँ रह गई। वह माँ, जो वक्त से पहले चलती-दौड़ती ही उसे दिखती थीं, आज वह पैरालिसिस और वक्त के आघातों को सहकर ठहर-सी गयीं थीं। वक्त ने दोनों की भूमिका बदल दी, माँ बेटी जैसी हो गई और बेटी माँ जैसी हो गई। माँ उसकी बच्ची थी।

कीर्ति को यहां तक पहुंचकर लगने लगा था कि वह पढ़े-लिखे लोगों के बीच स्वस्थ माहौल में काम करेगी लेकिन नियुक्ति के कुछ ही वर्षों में उसे यह माहौल भी, माँ से भिड़ते सड़क किनारे के, उन्हीं लोगों का लगने लगा। बिल्कुल वैसा नहीं, बहुत कुछ वैसा ही माहौल था। अक्सर उसे एक वरिष्ठ प्रवक्ता प्रो. मेखला गिरि नजरों से ही नीचा दिखाने की कोशिश करतीं हालांकि ऐसी बहुत-सी नजरों को माँ के साथ सड़क पर ही झेल कर, वह आगे बढ़ी थी। जब इससे भी उन वरिष्ठ सहयोगियों का मन नहीं भरा था तो वे तानों के साथ उसे लहूलुहान करने लगे। जैसे ही कीर्ति ब्रेक में अपना टिफिन लेकर खाना खाने बैठती वे तुरंत ही अपनी नाक सिकोड़ कर बाकियों से कहने लगतीं, 'अरे यह इतनी तेज बदबू कहां से आ रही है?' कीर्ति इस व्यवहार को खूब समझ रही थी। हर बार वह तीखी बातों को अपने दिल में टीसते हुए महसूस करती। वह अपने वरिष्ठ अध्यापकों से क्या-क्या सीखने की सोचे बैठी थी। वह पढ़े-लिखे लोगों के बीच काम करते हुए उनके अनुभव से बहुत कुछ सीखने की अपनी लालसा को अक्सर कौर-कौर तोड़कर किसी तरह हलक से नीचे निगल कर उतार रही होती।

विभागीय सदस्यों के लिए वह अब एक आसान शिकार बन रही थी। स्टाफ रूम उसे जंगल जैसा लगने लगा था। सामने सोफे पर बैठा भेड़िया। बगल में लोमड़ी, गिरगिट, बिना रीढ़ के जमीन पर रेंगते लिजलिजे जीव...। और भी ऐसे हिंसक जीव गुर्राते हुए, उसे नोच लेना चाहते थे। आज ही टीचर इंचार्ज महोदया ने उसे इस सेमेस्टर का टाइम टेबल हाथ में पकड़ाया था। यह पिछली बार वाले टाइम टेबल से अलग नहीं था। कक्षाओं के बीच लंबे अंतराल, दोपहर से देर शाम की कक्षाएं। इसे देखकर फिर उसका चेहरा रुआँसा हो उठा। उसे माँ की देखभाल के लिए सुबह की कक्षाएं चाहिए थी ताकि दोपहर के बाद वह घर लौट सके। उसने बड़े आग्रह के साथ डॉ. स्वर्णलता शर्मा से आग्रह किया, 'आप इसे ठीक करें प्लीज!' उन्होंने टाइम टेबल पर बात करने की बजाय सीधे ही बात बेपटरी करते हुए कहा, 'तुम्हें पता है कि मैं जिस परिवार से आती हूं, वहां नौकरी करने की जरूरत नहीं पड़ती। लाखों-करोड़ों का बिजनेस है हमारा। यहां तो बस शौक के लिए नौकरी पकड़ ली और मुझे प्रोफेसर बनना था।'

कीर्ति को इस जवाब की कोई तुकबंदी समझ नहीं आई। उसने तो टाइम टेबल की बात कही थी पर यह कौन-सी बात उसे सुना रही हैं। उसे लगा कि बाहर की प्रदूषण से भरी जहरीली हवा अब उसके माथे से होते हुए कहीं बहुत भीतर उतर रही है। उसे लगने लगा कि उस पर हो रहे इन लगातार हमलों ने उसमें कई नुकीले कोने निकाल दिए हैं। इन नुकीले कोनों से ही इस जंगली दुनिया को चुभाकर वो कुछ छेद कर देना चाहती थी ताकि उसमें से सारा मवाद बह जाए। थोड़ा ठहरकर उसने तुरंत खुद को संभाला और टीचर इंचार्ज को बड़ी विनम्रता से जवाब दिया, 'पर मैम मैं तो उस परिवार से आती हूं जिनके लिए नौकरी बहुत जरूरी है। यदि हम एक दिन भी काम पर न जाएँ तो हमारे घरों में चूल्हा नहीं जलता।' डॉ. स्वर्णलता शर्मा जी ने अपने नुकीले दांतों को निपोरते हुए कहा, 'अरे तभी तो कहती हूं कि तुम अभी बहुत छोटी हो, तुम्हें अभी बहुत कुछ सीखना है।' कीर्ति को लगा कि उसका सिर बहुत भारी हो रहा है। अब वह वहां से निकलकर कॉलेज ग्राउंड में पता नहीं कब से चक्कर

पृष्ठ सं. 104 पर शेष भाग

दिन बाद ग्रेड आई। चेतना अपनी ग्रेड देखकर चौंक गई। जिस प्रजन्टेशन की तारीफ पूरी क्लास के सामने सर ने की थी, उसमें उसे बी माइनस मिला है। दूसरे दिन जब क्लास हुई तो उसने विश्वनाथ सिंह सर से कहा, 'सर मेरा एक प्रश्न है आपसे?'

सर ने उसकी ओर देखा, उनके बोलने से पहले ही वह बोली, 'सर, पूरी कक्षा के समक्ष आपने मेरे प्रजन्टेशन की तारीफ की थी, तो आपके ऐसे क्या कारण रहे, जिनके चलते आपने मुझे बी. माइनस दिया। जबकि आपने स्वयं कहा था कि मेरा प्रजन्टेशन ए प्लस के लेवल का है।'

विश्वनाथ सिंह कुछ बोल नहीं पाए। उन्हें अंदाजा नहीं था कि उनकी कोई बहुजन छात्रा ऐसा दुस्साहस भी कर सकती है। उसने कक्षा में चिल्लाकर कहा, 'जातिगत भेदभाव कर रहे हैं आप, वो भी इतने चौड़ में, आपको अपने पद का भी मान नहीं रहा, जब तक आप जैसे लोग ऐसे सम्मानित पदों पर बने रहेंगे तब तक हमारा भी हौसला डगमगाने वाला नहीं, करिए आप अपने मन की, हम अपने मन की करेंगे, ऐसे करते हुए आपको थोड़ी-सी भी लज्जा नहीं आयी...।' पूरी क्लास में सन्नाटा छा गया।

क्या बोलते अब? इसलिए विश्वनाथ सिंह क्लास खत्म होने के समय से पहले ही अपना सामान समेट कर अपने चैंबर में चले गये।

पवित्रा ने चेतना को शांत कराते हुए कहा, 'अरे! यार इतना गुस्सा मत कर। ले पानी पी ले।' और पानी की बॉटल उसकी ओर बढ़ा दी। चेतना ने बॉटल हाथ में लेते हुए उसे जोर से दीवार पर दे मारी और चिल्लाते हुए बोली, 'हट! दोगला।'

बॉटल का पानी पूरी कक्षा में फैल गया था। पवित्रा अपने गुरु का अपमान नहीं सह सकी। उसने कहा, 'यार ऐसा मत बोल, वो गुरु हैं हमारे।'

क्रोध से लाल हो गई चेतना, चिल्लाकर कहा, 'मैं अपनी मेहनत के नंबर माँग रही हूँ। चमचागीरी करने के नहीं, चमचागीरी करके नंबर बटोरने की कला नहीं है मुझमें।'

अबकी बार पैर पटकती हुई पवित्रा भी कक्षा से निकल गई।

दूसरे दिन चेतना विश्वविद्यालय गई तो देखा नोटिस बोर्ड पर ग्रेड लिस्ट में उसके नाम के आगे ब्लू पेन से जो बी माइनस लिखा था उस पर लाल पेन से सीधी रेखा खींचकर बी प्लस बना दिया गया है। यह देखकर उसकी हँसी निकल गई।❑

पृष्ठ सं. 78 का शेष भाग

काट रही थी। ग्राउंड में फैली खिली धूप में छात्राओं का समूह भी खिले हुए पुष्प गुच्छों की तरह लग रहा था। हँसती, खेलती, सपने देखती बच्चियों के बीच कीर्ति हर झुंड में खुद को खड़ा देख रही थी। आगे बढ़ते हुए वह महसूस कर रही थी कि बहुत धीरे सब कुछ पीछे छूट रहा है। उसकी इच्छाएं, उम्मीदें, धरती की हरी घास का मोड़, आसमान का नीला रंग... पर तभी उसने महसूस किया कि धरती पीछे नहीं, साथ चल रही है। उसकी जमीन, मिट्टी, मिट्टी का रंग, धूल; उसे अचानक वापस कुछ मिल गया था।

उसे अचानक भैया की पंचर साइकिल वाली बात याद आ गई। एक बार फिर से उसके पैरों में साइकिल के दोनों पहिए निकल आए थे। स्टॉफ रूम की ओर वह तेजी से आगे बढ़ी। वहाँ जाकर सीनियर टीचर्स के ग्रुप में बैठी डॉ. स्वर्णलता शर्मा से उसने दो टूक शब्दों में कहा, 'आप मेरा टाइम टेबल ठीक कीजिए। यह हर सेमेस्टर में नहीं चलेगा। मैं इस बार प्राचार्या के पास जाकर इसकी लिखित शिकायत करूँगी।' फिर तेजी से उसने पास रखे हॉटकेस से खाने का डिब्बा निकाला। आज अकेले बैठने की बजाय उसी टेबल पर सभी के बीच उसने ढक्कन को कटोरी से आजाद कर दिया। खाने की खुशबू हवा में थी। सामने वाले समूह की त्यौरियाँ चढ़ चुकी थीं। वे लगातार आपस में तेज आवाजों में बातें कर रहे थे। सारी आवाजों में उसकी इस हरकत की बुराईयाँ हो रही थीं। उसने कुछ खास ध्यान नहीं दिया। उसके दिमाग में तो एक आवाज तेजी से घूम रही थी, 'साइकिल चलाना थोड़े छोड़ देंगे, यात्रा करना थोड़े छोड़ देंगे।' अभी तो उसे स्टाफ रूम की खिड़कियों के बाहर नीला आसमान नजर आ रहा था। खाना खाने के बाद उसने अपना झोले वाला बैग उठाकर कंधों पर रखा और वहाँ से निकलकर क्लास की ओर बढ़ने लगी। एक छात्रा ने उसके कंधे पर टंगे झोलेनुमा बैग पर लिखे अक्षरों को देख कर ध्यान से पढ़ा। वहाँ अंग्रेजी में 'HAUSLA' और उसी लाइन के नीचे हिंदी में 'हौसला' लिखा था।❑